6437

तित्थयर

सत्रहवाँ वर्ष । दिसम्बर १९९३ । अष्टम अंक

आ.श्री. कैलाससागर सूरि ज्ञान मंदिर
श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र कोबा

जैन भवन

तित्थयर

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्र
वर्ष १७ : अंक ८
दिसम्बर १९९३

□

संपादन
गणेश ललवानी
राजकुमारी बेगानी

□

आजीवन : एक सौ एक
वार्षिक शुल्क : दस रुपये
प्रस्तुत अंक : एक रुपया

□

प्रकाशक
जैन भवन
पी-२५ कलाकार स्ट्रीट
कलकत्ता-७००००७

□

मुद्रक
सुराना प्रिन्टिंग वर्क्स
२०५ रवीन्द्र सरणी
कलकत्ता-७

सूची

चेतावनी-पच्चीसी	२२७
जगडू शाह	२३६
त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र	२४२
संकलन	२५३
जैन पत्र-पत्रिकाएँ—कहाँ/क्या	२५४

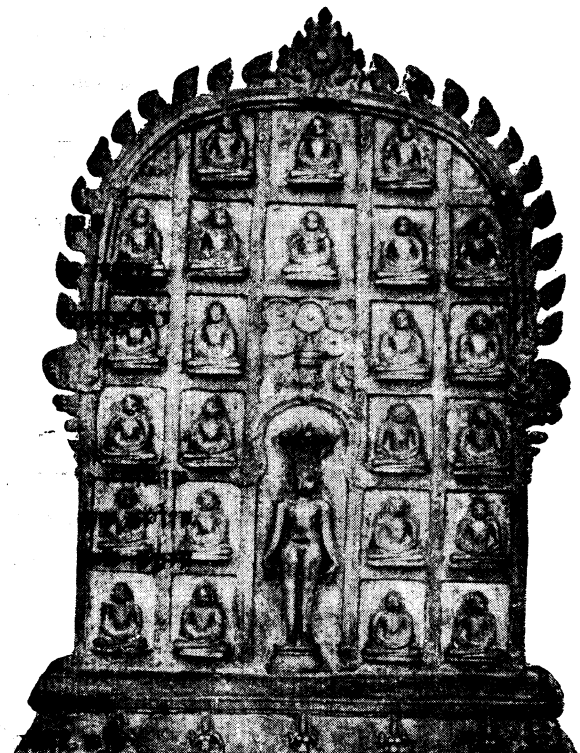

पार्श्वनाथ चौबीसी

चेतावनी-पच्चीसी

श्री कुन्दन लाल जैन

बुन्देलखण्ड जहाँ आल्हा, ऊदल, पन्ना और छत्रसाल जैसे वीर जवानों और बहादुरों की वीर प्रसवा जन्मभूमि रही है वहीं केशव, भूषण, देवीदास, चन्दनन्द, ईसुरी, छगन, लल्ले, मरजाद प्रभृति अनेकों प्रतिभाशाली कवियों की साहित्यिक स्थली भी रही हैं तथा देवगढ़, खजुराहो, अहार, पपौरा, सेरोनजी जैसे कला तीर्थ भी इसी बुन्देल भूमि को सुशोभित कर रहे हैं। ऐसे श्रेष्ठ प्रदेश के एक कवि चन्दनन्द जो सर्वथा अप्रसिद्ध हैं पर उनकी एक श्रेष्ठ रचना "चेतावनी-पच्चीसी" को हम यहाँ अविकल रूप से प्रस्तुत कर रहे हैं तथा उसी के आधार पर कवि के सम्बन्ध में कुछ जानकारी भी प्रस्तुत कर रहे हैं।

हमारे हस्तलिखित पाण्डुलिपि संग्रह में हमें कवि चन्दनन्द के दो दोहों और पच्चीस कवित्तों वाली एक पाण्डुलिपि प्राप्त हुई है जिस पर "चेताउनी" शब्द मात्र लिखा है जो "चेतावनी" शुद्ध शब्द का बिगड़ा हुआ रूप है। इसमें संस्कृत व्याकरण के नियमानुसार 'व' का 'उ' सम्प्रसारण होकर "चेताउनी" रूप रह गया है। वैसे बुन्देली भाषा में "व" को "उ" या "ओ" के रूप में प्रयोग देखा गया है जैसे "इटावा" को "इटाओ" "रखाव" को "रखाउ" आदि-आदि। इस रचना में केवल पच्चीस कवित्तों का ही संग्रह है अतः हमने दर्शन पच्चीसी, पुकार पच्चीसी, ज्ञान पच्चीसी, राजुल पच्चीसी प्रभृति अन्य पच्चीसी रचनाओं की भाँति इसका भी नामकरण "चेतावनी-पच्चीसी" कर दिया है। इन कवित्तों में कवि चन्दनन्द ने संसारी प्राणी को चेतावनी (warning) दी है कि हे संसारी प्राणी! इस दुनिया के माया, मोह, राग, द्वेषादि कुप्रवृत्तियों से विरक्त हो अरहंत प्रभु और सिद्धप्रभु का सुमरण कर उन्हीं की शरण गहो। क्रोधादि कषायों को त्याग आत्मचिन्तन और आध्यात्मिकता की ओर अग्रसर हो। कवि के सारे कवित्त उपदेश परक और परिपूर्ण चेतावनी से भरपूर हैं। सारे कवित्त अति उच्च कोटि के तथा साहित्यिक सरसता से भरपूर हैं। इन कवित्तों का आनन्द कोई रससिक्त आध्यात्मप्रेमी ही उठा सकता है।

प्रस्तुत रचना में कवि ने अपने नाम के अतिरिक्त और कोई भी आत्म परिचयात्मक सामग्री नहीं उल्लिखित की है अतः हम उनके जीवन परिचय

जन्मस्थान, जन्मतिथि तथा अन्य रचनाओं के बारे में प्रामाणिक रूप से कुछ भी नहीं कह सकते हैं, पर रचना में प्रयुक्त चौथे छन्द की दूसरी पंक्ति में नुहर-नुहर (झुकना), १२/३ में दौरि (दौड़कर), १४/२ में आँखि के मुँचे (आँख बंद होना), १७/१ में उवडीवट (उपटन), चुपरि-चुपरि (चुपड़ना) १९/३ में मिस (बहाने), २२/१ में झिरैं कूप (कुँए का झिरना), १५/२ में तिनूँका (तिनका-तृण), १६/१ चेराचेरी (दास-दासी), १८/३ में खेह (धूल), २४/१ में उकताइ (परेशान) आदि शब्दों की बहुलता से प्रतीत होता है कि कवि चन्दनन्द निश्चित रूप से बुन्देलखण्ड के निवासी थे पर बुन्देलखण्ड के किस नगर, गांव या स्थान के निवासी थे इसका कुछ भी पता नहीं चलता है।

कवि चन्दनन्द जैन धर्मावलम्बी थे यह तो सुनिश्चित ही है। रचना के प्रारम्भ में सिद्ध भगवान की स्तुति वन्दना इसका प्रबल प्रमाण है। इसके अतिरिक्त छन्द आठ की पहली पंक्ति, १५/३ तथा २५/४ में प्रयुक्त "अरहंत-अरहंत" शब्द भी उनके जैनी होने के प्रबल प्रमाण है ! इनके अतिरिक्त जैन दर्शन सम्बन्धी मान्यताओं का भी उन्होंने अपनी इस रचना में खुलकर विवेचन किया है अतः उनके जैनी होने में कोई शंका नहीं रह जाती है। बाकी कवि के व्यक्तिगत जीवन के विषय में कोई भी संकेत हमें रचना में दिखाई नहीं देता है और ना ही किसी अन्य रचना का भी संकेत मिलता है, पर बुन्देलखण्ड के शास्त्र भण्डारों, विशेषतया गुटकों में उनकी और भी कोई रचनाओं का उल्लेख मिल सकता है। हो सकता हैं कहीं से उनका जीवन परिचय भी मिल जावे। पर आवश्यकता है कठोर परिश्रम और अध्यवसाय की तथा शोध-खोज की लगन और प्रवृत्ति की।

कवि के रचनाकाल का कोई उल्लेख ढूंढ़ने से भी नहीं मिलता है, पर रचना शैली, उसमें प्रयुक्त वाक्यावली तथा अलंकारिक प्रयोगों से ऐसा अनुमान किया जाता है कि संभवतः कवि चन्दनन्द छत्रसाल महाराज के आश्रित तथा शिवाजी महाराज के प्रिय चहेते कवि भूषण के समकालीन या उनके बाद के रहे होंगे। चौथे छन्द की प्रथम पंक्ति में "चिकने चतुर चाव चोखे मिठबोला" इसी छन्द की अन्तिम पंक्ति में "ऐते गुण में के गुण एक-हन काम के" दूसरे छन्द की अन्तिम पंक्ति "होत बात बास ही रह जाती है," सोलहवें की अन्तिम पंक्ति "सु वेहु चरै काठ अरु वेहु चढ़ै काठ रे", अठारहवें की दूसरी पंक्ति "तोको जो दई है दई कहीं तू लगावो मति" आदि अलंका-

रिक वाक्यावली कवि भूषण के इन पदों की याद दिलाती है "तीन बेर खात ती वे तीन बेर खात है", नगन जड़ाती थी वे नगन जुड़ाती है", "कान्ह जिम कंस पर···सेर शिवराज है" आदि पदों से कवि चन्दनन्द के पद मिलते जुलते से हैं अतः यह कहने में संकोच नहीं होता है कि कवि चन्दनन्द कवि-भूषण के समकालीन रहे हों या उनके तत्काल बाद के रहे हों। यह सुनिश्चित है कवि का समय सत्रहवीं सदी का पूर्वार्द्ध या अठारहवीं सदी का उत्तरार्द्ध रहा होगा। पर शोध-खोज करने पर कवि चन्दनन्द के विषय में सुनिश्चित प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध हो सकती है।

बहरहाल प्रस्तुत "चेतावनी-पच्चीसी" सर्वथा अप्रकाशित और मौलिक है तथा आज की आपा-धापी में फँसे भौतिकवादी मानव के लिए सुख-शान्ति और संतोष का सन्देश देने वाली उत्कृष्ट रचना है। आध्यात्म प्रेमी व स्वाध्याय प्रेमी लोगों को इस रचना का ध्यान पूर्वक मनन और चिन्तन करना चाहिए। इसीलिए इस रचना को हम यहाँ अविकल रूप से उद्धृत कर रहे हैं।

"चेतावनी-पच्चीसी" की विशेषता है कि इसके प्रत्येक कवित्त में कवि ने अपना नाम अवश्य ही जोड़ दिया है जिससे पाठकों या स्वाध्याय प्रेमियों को इन छन्दों की प्रामाणिकता के विषय में किसी तरह संदेह न रहे तथा प्रक्षिप्तता की भी शंका न रहे। ठीक भी है तत्कालीन अन्य कवि जैसे रहीम, तुलसी, सूर, रसखान, दौलतराम आदि ने जैसे अपनी हर रचना में अपना नाम जोड़ा है उसी तरह चन्दनन्द ने भी अपने हर कवित्त में अपना नाम अवश्य ही जोड़ दिया है। हिन्दी के भक्ति कालीन कवियों की यह एक अच्छी परम्परा रही है जिससे आज हम उन कवियों और उनकी रचनाओं का पता लगा लेते हैं। अति प्राचीनकाल में संस्कृत के कवि या आचार्य अपनी रचनाओं में कहीं भी कोई संकेत नहीं देते थे कि अमुक रचना अमुक कवि की अमुक समय की अमुक राज्यकाल में रची गई अतः बहुत सी रचनाएँ अज्ञान के अंधेरे में ही पड़ी हुई हैं, इसके पीछे उनकी उत्कृष्ट भावना यही रहती थी कि वे आत्म-प्रशंसा और आत्म-ख्याति से बचना चाहते थे। उदाहरण के लिए आचार्य कुन्दकुन्द ने अपनी रचनाओं में कहीं भी अपना कोई परिचय नहीं दिया। काश ! अमृतचन्द्राचार्य 'समयसार' की आत्मख्याति टीका न लिखते तो कुन्दकुन्द को कौन जान पाता ? उसी तरह षटखण्डागम की टीका वीर सेनाचार्य धवला जयधवला नाम से न लिखते तो धरसेणाचार्य और पुष्पदन्त

और भूतकाली को कौन जान पाता ? अतः मध्यकालीन भक्तिकाव्य के कवियों ने अपनी रचनाओं में आत्म परिचय देकर हमें बड़ा उपकृत किया है। हमलोग उनके आभारी हैं और चिरऋणी है। अतः हम बुन्देली जैन कवि चन्दनन्द को अपनी श्रद्धा सुमन समर्पित करते हैं जिन्होंने ऐसी छोटी पर उच्चकोटि की रचना प्रस्तुत कर जिनवाणी के अगाध अगम भण्डार को सुशोभित किया है। ऐसी अनेकों छोटी-छोटी रचनाएँ शास्त्र भण्डारों के गुटकों में लुकी-छिपी है जिन्हें ढूंढ निकालना हर जिनवाणी भक्त का कर्त्तव्य हो जाता है।

अथ चेताउ(व)नी

दोहरा

सुमरि सिद्ध सिव सुखद अति करें सुमति उपदेस।
किए चंद के नंद ने चेतन भेद प्रभेद ॥ १ ॥
लोभ मोह मद काम में रहे जु भूल अजान।
तिह कारण चित चेतकें चेतन भेद बखान ॥ २ ॥

कवित्त

कबहूँ अमर रहै न पंडित न रहै ज्योतिषी अमर है, वैद्य हू की मृत्यु है।
भूप न अमर, पातसाह न अमर रंक रावण मरि है, अमर निवत है।
चंदनंद कूप ताल बाग जाग वृक्ष आदि पंछी पसु जे ते कोउ न अमर नित्त है।
अमर धरा हैं, सिद्ध पुरुषन की कीर्ति है,
के अमर धरा पे एक भक्तन को चित्त हैं ॥ १ ॥

प्राततें सु रात लौं, रात तें प्रभात लौं जु है न हार, काहे ताकी कछु न जनात है।
चंदनंद भली एक सार संसार मांझि करतु जहाँ जे ले अपनी वसाति है।
औसर के चूके फेर औ (व) सर न पाइयत चेत रे अचेत अरे पाछे पछताति है।
नेकु में बिलात, साथ गांठ बांध ले त जात,
गात होत, होतवात, बात ही रह जाती है ॥ २ ॥

कहा छुट जात, कहा छुट लुट जात, गाँठ कहा कम आई जस चंदनंद गेह में।
प्रभु की अपार गत्ति, भूले मत माया में, दिखाय देत तीनों लोक सुजही के देह में।
जात लोन आत मांहि रह जात सबे,
आपु के सम्हर बेग न तें खेह से वुच जेहें देह में।
करेगो किन मैं देह सुनकी कर ले के मूढ़ नीकी नर देह में ॥ ३ ॥

चिकने चतुर बाब चौरवे मिठ बोला बड़े,

                                        बड़ी चार आखर माहा ग्रमी अठै बाम कें।

जुहर जुहर (झुक) करे सबको सलाम, उपर उपर पन बांधे राम राम कै।

आप ढ़िग काहु काज आवत जे; देखे ताहि बागे होइ लेत बजमिक पूरे दाम के।

काम परे चन्दनन्द सुन खेचर हैं, वे वे ऐते गुण में के गुण एकहन काम के॥४॥

मित्र के न पाखे, शत्रु सुम केन सोव्यै,

                                        दिये दान हु न चोखो, आखर निहारी में।

काहु सें न नेह नाव, नये-जयेसे ग्रह करें लोभसे सनेह ऐसी देहु के न दारी में।

चंदनंद घर मंह ज्ञान, सर मंहु न जहु न कीने

                                        जग जाति में न नाम को मदारी में।

भूपति के द्वार पाय पूरी अख्यत्यार बनी,

                                        ऐती हूँ में न बातें, तो धिक्कार अब त्यारी में॥ ५॥

कौड़ी जुरे, तो कहै, कैसे कर पैसा होय,

                                        पैसा के जुरे तें, होत हाली काज आव रे।

हाली हु रुपैया जो, कहां चकर पावै

                                        हाथ आंकरी में, हेर कें लागे रे चित चाव रे।

चन्दनन्द ये ही हाव भीव करतो ही जात,

                                        अपुन बुझात सहै, मेह सीत ताव (प) रे।

धौस निस नारे कह कह, किसनारे कहिए सीत समारे बगौ बड़े भये बाबरे॥६॥

दिने जिहां, जर्म कर्म गये तहां, भूल फूल फुलि भये, मसत नेकहु नरमापहु।

जा दिन परेगी जान में नाम लेन अहे,

                                        जम जवाब देहै कहा लोभ से मोह विरमापहु।

चन्दनन्द नित मेरो मेरो करते ही गयो, ऐसे झगड़े में बड़ो काके फरमावहु।

जनम ही गमायो,, काम काहू के आयो,

                                        कौन काम जु कमावो मूढ़ कैसे भरमावहु॥ ७॥

श्रवण सुने न काहू अरहंत एकजाम, चौखे दगतें नसू सुहढ़ नीत नेहरे।

सुनो रे सुभासक, न भेद विनासक

                                        कहू कही न सुफतें, कही सुतें अरे अरहंत अरहंत रे।

हाथ पाय के करे न धर्म, न सुकर्म, कर्म पाइके चलो न तूं सुरीत रीत ग्रेह रे।

एक हूँ न अंगतें बन्यो सुकाम चंदनंद,

                                        आमके न दाम, ऐसी के न काम देह रे॥ ८॥

सुने जे पुरान, भगवंत के विधान, जपहु क्या हु न लेकतें सुने को कहा धर्म है।
साधक त्रिकाल करे निपट अक्षोम और गणिका से रत तो अवस देह चर्म है।
करत हमेस व्रत कठिन के, न पुन बचत बुराई तें, वृथा ही यह भरम है।
चन्दनन्द आखिर झलेगी जीव ही की,
देख पायगो हमारे कियो झूठे षट् कर्म है॥ ९ ॥

ऐरे सुन जो लों यह कोड़ी (माया) थिर तेरे हाथ,
तोलों सब तेरो घर चोरें सीरेहात है।
उपधि उपदि अरु औरत है नातो, निज बात की कहा, पै कका कहै पर जात है।
चन्दनन्द हे ! रे ! यह सम्पति को साथी नर,
आपदा परे तो पास एक न रहात है।
यातें नर मूढ़ ! बड़ो आपु कों न बूझि,
बड़ी एक दुनिया में देख दौलत दिखात है॥ १० ॥

राखेगो दयां तो माया हजूर बनी है,
हाल पाप किए नरक, यातें बार बार टोके रे।
जायगो सिखर तो हाल काया तिर जैहे,
अरे हुई है दूर पातक तें जा देह त्रास केरे।
चन्दनन्द लेहैं जे यह अरहंत सिद्ध नाम,
तो पावे है पद मोक्ष, अरे जो है स्वर्ग लोक रे।
भली देख भली करे, बुरी करे बुरी देख,
जैसी तूं करेगो तै सोई हालोहाल तोकों रे॥ ११ ॥

सिख देत औरन को लोभ मोह काम के न,
आपु लोभ मोह मांहि राखें अति प्रान है।
आपुन ही ज्ञान कथा कहि के सुनावत पै,
एक दिन पाछे आप ज्यों को त्यों दाने है।
चन्दनन्द जानत है माय जग झूठिपन, दोरि हो वाहि मांझि परत कूसान हो।
आप समुझावन हारे, आप समुझे न पन,
ऐसो नर जान फूहड़ है अजान है॥१२॥

कांचो घट है रे यह, कांचो घट है रे,
देख नाचे क्यों वृथा ही, यह जावे मौन झोर है।
न जंत्र की चले, न मंत्र की चले,
न देव प्रेत की चले, न कूरे बाहु को न केर है।

चन्दनन्द यातें एक ही तो विचार सार,
सब ही सोने को चल छांड पे वर्ष रे है।
सांझ और सबेरे उडि रैहैं है परवेरु,
यातें जग मे सबेरो करि लेईगो सो तेरो है ॥ १३ ॥

ऐरे ! सुनि जो लौं यह तेरे घट मे है जीव,
तो लौं तुव तेरे आन जाने सब मेरो है।
आँखि के मुंचे तें कोऊ एकहु न तेरो,
कहै काढ़ो वेगि याहि, लगे ऐसो तुउ हेरो है।
चन्दनन्द यातें सब झूठो जग ना तो आहि,
थोरे ही दिन को देख जग मे बसेरो है।
जाहि तूं कहैं रे यह मेरो, यह मेरो, सुनि सो
तो नांहि तेरो, कियो तेरो है सु तेरो है ॥ १४ ॥

बालापन खोयो सब धूरि धूरि खेलन मैं,
जवानीपन मांहि भूले क्यो भये घनेरो तूँ।
वृद्धापन आये कछु कहि वो सुनन परे,
भई दृष्टि छीन आव रोगन है घेरो तूं।
चन्दनन्द तीनों पन सोयो तूं, बताने पे न जानो,
अरहंत नाम ऐसे पावन जंजेरो तूं।
जमन को घेरो केरि, कीरे गमन केरो,
चेत अवहुँ सबेरो, क्यों बिगारे रतन तेरो तूं ॥१५॥

एकन के चेरा चेरी चमत्कार हाथी घोड़े अरु रथ दौलत ठाठ रे।
एकन के झोपड़ी, तन का तिनूं काहू नांहि,
न चुनत, न मांगे मिले ऐसी विधि नाठरे।
चन्दनन्द है रे पन आखिर को दोनों सम,
कीयो ही रहे पे साथ ले न जात गांठ रे।
अंतकाल भए से चले न रंक राव की,
सु बे हु चरै काठ अरु वे हु चढ़े काठरे ॥ १६ ॥

उवड़ीवटि (उपटन) न्हात, लावत सुवा गात, चुपर चुपर चोवा चंदन को तुर है।
चार चतुराई कर चुपरी सी वांधै पाग, ऊजरे वसन साज, बैठो कर नूर है।

चन्दनन्द यातैं आप जामै और मो सों कोच ?
ऐ! रे! सुनि मूढ़ सो तो बात बहु दूर है।
औसर की बार आप छर पर छरजे न करनी उधार,
तो श्रृंगार सब धूरि है ॥ १७ ॥

थिर न सुनी रे कहूं, थिर न रहे रे अरे, थिर न रहेगी, महा चंचला तजो दूरे।
तो को जो दई है, दई कई तूं लगावों मति,
कर लेके हाल मन भावे सोई सोई रे।
चन्दनन्द ऐसे में न तीरथ करवे को चित्त,
तूं तो यह देह सब खेह माही खोई रे।
लाख करो कोई माया, झूठी सब कोई कहै,
रहेगो न कोई, एक रहेगी न कोई रे ॥ १८ ॥

धर है घरां में तो तूं धूरि हो जे है,
फेरि हाथ न चढ़ेगी, देखत सबही विलायगी।
राखेंगे भण्डार मांझि मूढ़ महा चौकस,
सो होय जैहै चोरी, देख चिंता चित छायी।
लेहैं लूटि काहू बेरि, हाकिम हु काहू मिस, हेरे! यह जब तब खोखो कुछ रावनी।
चन्दनन्द याकूं देख तासूं तो घनेरो,
यातें पे की कर लेह जोइ, सोइ रह आवगी ॥१९॥

करि करि फांके आठ टूंक कमरा को करे, तीनों कन पूरे चना चरि चार चाव के।
तन कों न चैन दिन रैन कबहु, न जक क्यों त्यों जर ऐसे करे तोहू हाय हाय रे।
चन्दनन्द ताको कहै मेरो सी सुखी,
व कौन जाने, कबहूं न नाम कीबे को सुभाव रे।
बीतो सब जनम दुख दुंदन के बुन्दन में
ऐसी संपदा से भलीं आपदा बावरे ॥ २० ॥

बांध्यो बड़े भाई के सुनाम से हमें सवेरे
नाना से लगा यो हेत, ऐसी मति पायो रे।
तात मात आदि इन सब ही सों तोरो रुख,
लाला सों सदा ही हित ही को अनुरागो रे।
चन्दनन्द मांगे मन नातो जान फांके टेर कीनो, कमला के चैन हूं न भाग्यो रे।
अबहू संभार, देख है है छिन माहि छार,
समाउ सब, नांणो भाग जायगो अभागो रे ॥२१॥

घटत अनेक, फिरै कूप मांझि प्रातः रात होत, न खेर तेउ ताही लौं रहाइ रे।
होतहु खरच जब, अचिरज तोहु यह, हां ही लौं रहाई सबही, न सुख जाइ रे।
चंदनंद याही भांति जानिए सबै ही,
जगकोउ खीर खांड, कोउ ने खट्टो कषाय रे।
आखिर कों मिष्ट स्वाद भखो, तो भखो पे कहा,
पे हू तीन पाव खाय के हू तीन पावरे ॥ २२ ॥

त्यौ यो कछु न लिये जायगो कछु न साथ,
चार दिवस तेरे मन मांही सो मनाय ले।
घटत बढ़त बार बार न लघु गुरु ने कुपार नांहि याको बन आवै सो बनाय ले।
चन्दनान्द चेतकरि, चित मै विचार देख,
तीन पाव नित नित खावरे सुख पाय ले।
रहट घड़ी सो चकरी सो जग जाल,
जीव यामें करनी को नफा कइले सु पाय ले ॥२३॥

धीर गहिए रे नर धीर गहिए रे ! कर नेकु विश्वास, क्यों ऐसो उकताई रे।
घर घर पीर कहै, होयगो क्यारे ! सुनि आपुन पापो आपुने ही हाथ को लगाई रे।
चन्दनन्द देख जनम होत ही रचो ही खीर,
तौहू न भरोसो दूनो दूनो तन खाइ रे।
नित कुल छंदन के फंद करते ही जाय तीन पाव खाइ ताहि ऐसो घबराइरे ।२४।

नानी और नाना न जन्यो नाती निज,
नाहिं कही मात तात हू को हेत चित मत ल्यावे रे।
याही भाँति दाता तेरे जान सुख दाई पन-
ज्ञान कर देख हरि बैरी तन तावे (पे) रे।
चन्दनन्द यै कहू न होत तिहू काल,
साथ आनि अहि काल विकराल काल खावे रे।
तातैं तजि झूठो व्यवहार मोह जाल,
भजि अरहंत अरहंत सार तासें मोक्ष पद पावे रे ॥२५॥

इति कवि चन्दनन्द के कवित्त सम्पूरन

जगड़ू शाह

[जैन कथानक]

'दान करके समस्त धन को उड़ा रहे हो जगडू !'—जगडू शाह के एक घनिष्ठ मित्र जयन्ती भाई ने यह बात कही। बोले, 'लक्ष्मी का सम्मान करना सीखो। संसार का तो यह नियम है जो देता है लोग उसके पीछे ही पड़ जाते हैं। अपने दुर्दिन के विषय में भी तो जरा सोचो। उस दिन तो ये सब जिनका उपकार तुम कर रहे हो तुम्हारी तरफ देखेंगे तक नहीं।'

सुनकर जगडू शाह कुछ मुस्कुराए। बोले, 'भाई, लक्ष्मी का अनादर तो वे ही करते हैं जो अपने लिए ही धन व्यय करते हैं। और तुम जो दुर्दिन की बात कह रहे हो तो बताओ दुर्दिन में अपने पुण्य के सिवाय और कौन रक्षा कर सकता है? जो पुण्यहीन होते हैं उनकी ओर आत्मीय स्वजन तो दूर अपनी पत्नी और पुत्र भी नहीं देखते। फिर लक्ष्मी चंचल भी तो है। आज है कल नहीं। अतः लक्ष्मी के रहते हुए ही उनका सदुपयोग कर लेना क्या अच्छा नहीं है?'

'तुम से बातों में कौन जीत सकता है'—कहता हुआ क्रोधित-सा जयन्ती उठकर चला गया। जाते-जाते कह गया, 'जैसी तुम्हारी इच्छा हो वैसा ही करो।'

जयन्ती तो चला गया किन्तु उसके मन में एक विचार छोड़ गया। यदि सचमुच ही दुर्दिन आ गया तो? जिस दिन कि उसके द्वार से प्रार्थी खाली हाथ लौट जाएँगे। जगडू शाह सोच ही नहीं पाए कि भला उससे बढ़कर दुःख उनके लिए क्या होगा? एतदर्थ मन-ही-मन भगवान से प्रार्थना करने लगे, 'भगवन्, ऐसा दिन मेरे जीवन में कभी न आए।'

एक दिन सन्ध्या समय जब जगडू शाह बाहर से लौटे तो देखा उनके दरवाजे पर एक बनजारन लड़की खड़ी है। उसकी गोद में एक बकरी का बच्चा था। उनके निकट आते ही वह लड़की उनको बोली, 'सेठजी, कल सुबह ही हमारा काफिला यहाँ से चला जाएगा। इस बच्चे को ढोकर कहाँ तक ले जाऊँगी, अतः आपको देकर जाना चाहती हूँ।'

जगडू शाह ने लड़की की ओर देखा। बोले 'ठीक है। उसे इस सामने वाले नीम के पेड़ में बाँध दे'। फिर जेब से दो रुपए निकाल कर उसे दे दिए।

लड़की आँगन के नीम के पेड़ से बाँधकर चली गयी। उसके खाने के लिए कुछ पत्ते बिखेर गयी।

दूसरे दिन जगड़ू शाह को हठात् बकरी के बच्चे का ध्यान आया। उसे देखने गए। बड़ा हृष्ट-पुष्ट था। अचानक उसे देखते हुए उनकी नजर उसके गले में बंधे एक चमकीले पत्थर पर गयी। उन्हें लगा यह साधारण पत्थर नहीं है। उसको अच्छी तरह निरीक्षण किया। मन-ही-मन कह उठे—अरे, यह तो हीरा है और इतना बड़ा। इसकी कीमत तो कम से कम दस लाख रुपए हैं।

जगड़ू शाह ने उस पत्थर को खोलकर अपनी जेब में रख लिया। उस लड़की को खुजवाया किन्तु वह नहीं मिली। कारण काफिला रात को ही कहीं चला गया था।

लक्ष्मी जब सदय होती है तब ऐसा ही होता है।

जगड़ू शाह ने उस पत्थर को बेचकर बहुत धन प्राप्त किया। उस धन ने उनके व्यवसाय को खूब बढ़ा दिया। अब तो केवल देश में ही नहीं विदेश में भी उनके जहाज द्रव्य लेकर जाने लगे। फलतः जगड़ू शाह का ऐश्वर्य दिन पर दिन बढ़ने लगा। उसी अनुपात में उनका दान भी बढ़ता गया।

एक बार एक जहाज में माल भरकर जगड़ू शाह का मुनीम ईरान गया। बन्दरगाह पर उतर कर थोक माल न बेचकर उसने वहाँ व्यवसाय करना निश्चय किया। अतः एक बखारी भाड़े पर ली। उसी बखारी के पास ही एक बहुत बड़ी बखारी लेकर रह रहा था खम्भात का एक मुसलमान व्यापारी। उसकी तुलना में जगड़ू शाह की बखारी खूब छोटी थी।

एक दिन उन दोनों बखारियों के बीच मिट्टी खोदते समय एक पत्थर की शिला प्राप्त हुयी। न्यायतः वह शिला जगड़ू शाह के मुनीम की ही होती थी, कारण वे ही अपने ओर की मिट्टी खुदवा रहे थे किन्तु वह मुसलमान व्यवसायी बीच में ही बोल उठा 'यह शिला मेरी है।'

उस शिला को लेकर खूब तर्क-वितर्क, वाद-विवाद हुआ किन्तु कोई भी पक्ष अपना अधिकार छोड़ने को राजी नहीं हुआ। अन्ततः उस शिला की बात बन्दरगाह के शासक के पास पहुँची। उसने उन दोनों को बुलवाया। बोला, 'तुम लोग झूठ-मूठ झगड़ा कर रहे हो। यह शिला तुम में से किसी की नहीं है। कारण जमीन मेरी है और उस जमीन के नीचे जो कुछ भी

पाया गया वह मेरा है। फिर भी मैं इस शिला का क्या करूँगा। मैं इसका निलाम करता हूँ। जो अधिक दाम देगा यह उसकी होगी।'

मुसलमान व्यवसायी ने कहा, 'मैं इस शिला का दस हजार दीनार दूँगा।' सोचा जगड़ू शाह का मुनीम इतना देने का साहस नहीं करेगा।

किन्तु जगड़ू शाह का मुनीम जरा भी नहीं डरा। उसने कहा, 'मैं बीस हजार दीनार दूँगा।'

तब मुसलमान व्यवसायी ने कहा, 'मैं तीस हजार दूँगा।'

जगड़ू शाह के मुनीम ने कहा, 'मैं पचास हजार दूँगा।'

इस प्रकार बढ़ते-बढ़ते एक लाख दीनार तक बोली पहुँच गयी।

अब जगड़ू शाह का मुनीम दुविधा में पड़ गया कि अब आगे बढ़ूँ या नहीं।

उसे चुप देखकर वह खम्भात का व्यवसायी हँस पड़ा। व्यंग्य कसता हुआ बोला, 'बस इतनी ही है तुम्हारी दौड़। मैं हूँ खम्भात का खानदानी व्यापारी। जगड़ू शाह तो कल का छोकड़ा है। मुझसे कौन बढ़ सकता है?'

सुनकर मुनीम का मुख और नेत्र लाल हो गए। उससे मालिक का यह अपमान सहा नहीं गया। पैसे से बड़ी होती है इज्जत। अतः वह तत्काल बोल उठा, 'मैं उस शिला का डेढ़ लाख दीनार दूँगा।'

मुसलमान व्यवसायी ने दो लाख कहा तो जगड़ू के मुनीम ने तीन लाख कहा। अब मुसलमान व्यवसायी चुप हो गया। चार लाख बोलने का उसको साहस ही नहीं हुआ।

तीन लाख दीनार देकर जगड़ू के मुनीम ने वह पत्थर खरीद लिया।

ईरान में सर्वत्र जगड़ू शाह का नाम फैल गया। सभी सोचने लगे न जाने वह कितना धनी है? खम्भात का खानदानी मुसलमान व्यवसायी जिसे नहीं खरीद सका कच्छ के जैन व्यापारी के मुनीम ने उसे खरीद लिया।

ईरान से लौटते व्यापारियों से वह सुनकर जयन्ती ने जगड़ू शाह से कहा, 'तुम्हारा मुनीम तो तुम से भी आगे है। माना—दान देना पुण्य का काम है, किन्तु नीलामी में बढ़ते हुए तीन लाख में एक पत्थर का टुकड़ा खरीदना कौन सा बुद्धिमानी का कार्य है?'

जगड़ू ने सब कुछ सुना। बोले, 'भाई जयन्ती, रुपए से बड़ी मनुष्य की

इज्जत होती है। मेरे मुनीम ने मेरी इज्जत की रक्षा की है। खम्भात के मुसलमान व्यापारी के ताना देने के पश्चात् वह अगर पीछे हट जाता तो लोग मेरे नाम पर छी-छी करते। उसने ऐसा नहीं कर मेरा नाम रोशन करवा दिया है। इस समय ईरान के हर व्यक्ति के मुख पर मेरा नाम है। वे कह रहे हैं—व्यापारी तो कच्छ का जैन व्यापारी है जिसके मुनीम की भी इतनी बड़ी छाती है।'

भद्रेश्वर के घाट पर जगड़् शाह का जहाज लगा। इस बार जगड़् शाह अपने मुनीम का स्वागत करने स्वयं आए।

जगड़् शाह को जहाज पर चढ़ते देख मुनीम कुछ डर-सा गया। सोचा शिला खरीदने की बात इनके कानों तक पहुँच गयी है। इसीलिए उसका तिरस्कार करने तुरन्त आए हैं। किन्तु जगड़् शाह ने आते ही मुनीम को छाती से लगा लिया। बोले, 'डर क्या है! मैं वहाँ होता तो मैं भी वही करता जो कुछ तुमने किया है। धन तो तुम मेरे लिए सदैव ही उपार्जन कर लाते हो, इस बार तुम मेरा नाम उपार्जन कर लाए हो।'

सुनकर मुनीम की आँखों में जल भर आया। सोचा, ऐसा मालिक भी भाग्य से मिलता है।

जगड़् शाह ने गाजे-बाजे के साथ उस शिला को अपने मकान में ले जाकर आँगन में जड़वा दिया।

पठार के राजा पीठदेव बीच-बीच में भद्रेश्वर पर आक्रमण करते थे और लूटपाट कर धन ले जाते। इससे दुःखी होकर जगड़् शाह ने गुजरात के राजा को दुर्ग बनाने का सुझाव दिया। किन्तु गुजरात के राजा ने वह प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया। बोले, 'राजकोष में उतना धन नहीं है।'

यह सुनकर जगड़् शाह तत्काल बोल उठे, 'स्वामी, आपसे अर्थ कौन माँग रहा है! मुझे तो आपका आदेश और सुरक्षा के लिए सैन्य चाहिए। मेरे पास जो कुछ भी है वह देश की शान्ति और सुरक्षा के लिए है।' यह सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुए और उन्हें दुर्ग-निर्माण का आदेश दे दिया।

पीठदेव को जब ज्ञात हुआ कि जगड़् शाह भद्रेश्वर दुर्ग-निर्माण कराने जा रहे हैं तो उनको कहलवा भेजा कि 'गधे के सिर पर यदि सींग उगेगा तो भद्रेश्वर का दुर्ग-निर्माण सम्भव होगा।'

प्रत्युत्तर में जगड़ू शाह ने कहलवाया—'मैं गधे के सिर पर सींग उगाकर ही गढ़ का निर्माण कराऊँगा।'

जगड़ू शाह ने सैन्य व्यवस्था कर गढ़ का निर्माण करवाना प्रारम्भ करवा दिया। पीठ देव के बार-बार आक्रमण करने पर भी गढ़-निर्माण का कार्य रुका नहीं। गढ़ का निर्माण शेष होने पर जगड़ू शाह ने दुर्ग के दरवाजे पर पत्थर का गदहा बनाकर उसके माथे पर सोने के सींग लगवा दिए।

लज्जित होकर पीठदेव ने जगड़ू शाह से सन्धि कर ली।

जगड़ू शाह जैसे कर्मवीर थे वैसे ही धर्मवीर भी थे। वे धार्मिक कार्यों में मुक्त हस्त से दान देते थे। एकबार वे अपने गुरु को स्वगृह में लाए। वे आते ही आंगन में जड़ी शिला को देखकर बोल उठे, 'जगड़ू, यह शिला कहाँ से आयी? इसमें अनेक रत्न संचित हैं। शिला को तोड़कर उन्हें निकाल लो। और हाँ सुनो, गुजरात में एक के बाद एक तीन वर्षों का अकाल पड़ेगा। उस समय तुम इस धन का सद्व्यवहार करना।'

सचमुच ही शिला को तोड़ने पर अनेक मणि मुक्ता हीरा जवाहिरात प्राप्त हुए। मानो एक राजा का ऐश्वर्य हो। उस ऐश्वर्य को देखकर जगड़ू प्रसन्न हुए किन्तु एक के बाद एक तीन वर्षों के दुर्भिक्ष की बात याद कर बहुत दुःखी भी हुए। वे तीन वर्षों तक पूरे गुजरात को खिलाएँगे सोचकर जगह-जगह बड़े-बड़े गोदाम बनवाए और देश-विदेश से धान्य क्रय कर दुर्दिन के लिए उस गुदाम में संचय करने लगे।

जगड़ू शाह के वही शुभ चिंतक मित्र फिर एक दिन आए उन्हें सावधान करने के लिए। बोले, जगड़ू, 'तुम क्या पागल हो गए हो? दुर्भिक्ष के समय तुम तीन वर्षों तक सारे गुजरात को खिलाओगे? बताओ तो तुम्हें इसके बदले क्या मिलेगा?'

'पाने के लिए मैं यह कार्य नहीं कर रहा हूँ जयंती भाई। जनता को खिलाने के लिए अन्न क्रय कर रहा हूँ।'

'तभी तो कह रहा हूँ क्यों इतना महाश्रम कर रहे हो? जानते तो हो कि लक्ष्मी चंचला है। तो फिर स्वयं के लिए भी तो कुछ सोचो। सब लुटा देने से कैसे होगा?'

हा हा कर अट्टहास कर उठे जगड़ू शाह। बोले—'जयन्ती, तुम क्या भांग पीकर आए हो? तुमने कहा, लक्ष्मी चंचला है, दुर्दिन के लिए संचय

करके रखो। जरा बताओ क्या मेरे संचय करने पर वह रह जाएगा? फिर यह तो एक प्रकार से दुर्दिन के लिए ही तो संचय है।'

'जगड़ू, तुम को बातों में कोई जीत नहीं सकता किन्तु तुम मेरी बात समझने की चेष्टा करो। समग्र गुजरात को खिलाने का दायित्व तुम पर है कि राजा को? यदि वे कोई प्रचेष्टा नहीं करते हैं तो तुम्हारा क्या? यह अपव्यय कर रहे हो। दुर्भिक्ष सारे भारतवर्ष में तो आएगा नहीं। यहाँ दुर्भिक्ष होने पर जहाँ सुकाल हो तुम वहाँ चले जाना।'

इस बार जगड़ू शाह क्रुद्ध हो उठे। बोले, 'छीः छीः तुम यह क्या कह रहे हो जयन्ती? जिस देश की धरती पर मैं जन्मा, जिस देश की मिट्टी का अन्न-जल खाकर मैं इतना बड़ा हुआ उसे दुर्दिन के समय छोड़कर चला जाऊँ? नहीं जब तक मेरे कोष में एक भी कपर्दक रहेगा मैं जहाँ से भी बन पड़ेगा अन्न मंगाकर अपने देश के लोगों को खिलाऊँगा। उनके सुख से ही मैं सुखी हूँ, उनके दुःख से ही दुःखी।'

अब जयन्ती चुप रह गया—क्या प्रत्युत्तर देता इसका?

जगड़ू शाह के गुरु के कथनानुसार ठीक १३८७ में गुजरात में दुर्भिक्ष प्रारम्भ हुआ। उस दुर्भिक्ष से अपने देशवासियों को बचाने के लिए जगड़ू शाह ने तो पूर्व तैयारी कर ही रखी थी। अब उनके द्वारा स्थापित १११ दान शालाएँ दुर्भिक्ष पीड़ितों को अन्न देने लगी। कहा जाता है उन दान-शालाओं से प्रतिदिन दो लाख लोगों को अन्न मिलता था। वे लोग दोनों हाथ उठाकर जगड़ू शाह को आशीर्वाद देते थे।

जगड़ू शाह की वह दानशीलता आज तो किम्बदन्ती में परिणत हो गयी है।

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र

श्री हेमचन्द्राचार्य

[पूर्वानुवृत्ति]

राजा सोमप्रभ के मुख से अपराजित का परिचय प्राप्त कर अन्यान्य राजाओं ने भी युद्ध बन्द कर दिया। जो शत्रु बने हुए अब तक युद्ध कर रहे थे वे ही अब मित्र होकर उनके विवाह मण्डप की शोभा वृद्धि के लिए वहाँ उपस्थित हो गए।

तदुपरान्त एक शुभदिन राजा जितशत्रु ने अपराजित और प्रीतिमती जो कि एक दूसरे के प्रति आकृष्ट हो गए थे, का विवाह कर दिया। अपराजित जिसने की अब अपना पूर्व रूप ग्रहण कर लिया था अब सभी उसके रूप और शौर्य की प्रशंसा करने लगे। विवाह शेष होने पर राजा जितशत्रु ने सभी राजाओं को सम्मान पूर्वक विदा किया और अपराजित प्रीतिमती के साथ यौवन सुख का भोग करने लगे। जितशत्रु के मन्त्री के रूपवती नामक एक कन्या थी। उसने मंत्रीपुत्र विमल बोध के साथ उसका विवाह कर दिया। वह भी उसके साथ क्रीड़ा करता हुआ वहीं रहने लगा।

एक दिन हरिनन्दी का एक दूत आया। अपराजित उसे देखते ही आलिंगन में ले लिया और पूछा, 'माताजी-पिताजी कुशल है न?'

प्रत्युत्तर में दूत अश्रुसिक्त होकर बोला, 'वे मात्र देह धारण किए हुए हैं। बस यही उनकी कुशलता है। जिस दिन से आप अदृश्य हुए उसी दिन से उनके नेत्र कभी अश्रुहीन नहीं हुए। लोगों के मुख से जब-जब आपकी कीर्ति-कथा सुनते हैं मुहूर्त मात्र के लिए आनन्द का अनुभव करते हैं, किन्तु दूसरे मुहूर्त में ही आपकी वियोग वेदना से मूर्च्छित हो जाते हैं। आपका यह निश्चित संवाद पाकर मुझे इसकी यथार्थता जानने के लिए भेजा है। अब आप अपने माता-पिता को और दुःखी न करें।'

दूत की बात सुनकर अपराजित के नेत्र भर आए। उन्होंने रूँधे हुए कण्ठ से कहा—'धिक्कार है मुझे कि मेरे कारण माता-पिता को इतना कष्ट उठाना पड़ा।' तदुपरान्त राजा जितशत्रु से विदा लेकर अपराजित अपने देश की ओर प्रस्थान कर गए। तभी विद्याधरपति भुवनभानु भी अपनी दो कन्याओं के साथ वहाँ उपस्थित हुए। अन्य राजाओं ने भी जिनकी कन्याओं के साथ अपराजित का विवाह हुआ था अपनी-अपनी कन्याओं के साथ वहाँ आए।

सुरकान्त भी न जाने कहाँ से आ उपस्थित हुए। अपराजित प्रीतिमती और अन्य पत्नियों सहित भूचारी और आकाश चारी राजाओं और उनकी सेनाओं से परिवृत होकर आकाश और पृथ्वी को आवृत करते हुए कुछ ही दिनों में सिंहपुर पहुँच गए।

अपराजित ने अपने पिता को साष्टांग प्रणाम किया। राजा हरिनन्दी ने उसे उठाकर अपनी गोद में बैठा लिया और बार-बार उनका मस्तक चूमने लगे। जब उन्होंने अपनी माँ को प्रणाम किया अश्रुसिक्त नेत्रों से उनकी माँ ने भी पीठ सहलाते हुए उन्हें गोद में ले लिया और उनका मस्तक चूमने लगी। तत्पश्चात् प्रीतिमती आदि पुत्र वधुओं ने भी अपने सास श्वशुर को प्रणाम किया। विमलबोध ने उन सबका परिचय करवा दिया। फिर अपराजित ने भूचारी और आकाशचारी राजा और उनकी सेना को विदा दी। अब वे अपने माता-पिता के आनन्द को वर्द्धित करते हुए दिन व्यतीत करने लगे।

मनोगति और चपल गति का जीव भी महेन्द्र देव लोक से च्युत होकर अपराजित के सूर और सोम नामक अनुज रूप में उत्पन्न हुए। कुछ दिनों पश्चात् हरिनन्दी राजा अपराजित को राज्य सौंपकर दीक्षित हो गए। दीर्घ दिनों तक तपस्या कर उन्होंने मोक्ष प्राप्त किया। प्रीतिमती अपराजित की प्रधाना राज महिषी बनीं। विमलबोध मन्त्री बना और उनके दोनों अनुज माण्डलिक राजा बने। इस भाँति प्रजा का पालन करते हुए अपराजित के दिन सुखपूर्वक व्यतीत होने लगे। उन्होंने अपने राज्यकाल में अनेक चैत्यों की स्थापना और अनेक तीर्थों की यात्रा कर अपने जीवन और धन को सार्थक करने लगे। एक दिन राजा अपराजित उद्यान में गए। वहाँ उन्होंने अनंग से सुन्दर अनंगपाल नामक एक सार्थवाह पुत्र को देखा जो कि दिव्य वस्त्रों से सुसज्जित, मित्रों सहित पत्नियों को लेकर क्रीड़ा करने आया था। वह याचकों को धन-दान दे रहा था और वन्दीगण उसका गुणगान कर रहे थे। उसे देखकर विस्मित बने अपराजित ने अपने एक अनुचर से पूछा वह कौन है? उसने प्रत्युत्तर दिया महाराज वह हमारे नगर के समुद्रपाल सार्थवाह के पुत्र अनंगपाल है। यह सुनकर अपराजित अत्यन्त प्रसन्न हुआ। बोला— मैं धन्य हूँ कि मेरे राज्य में ऐसे उदार और धनी मानी सार्थवाह निवास करते हैं। ऐसा कहकर अपराजित अपने महल को लौट गया।

दूसरे दिन राजा अपराजित पुनः नगर के बाहर गए। वहीं उन्होंने चार जनों को एक शव ले जाते हुए देखा। उनके पीछे केश बिखरे स्त्रियों को

रोते-रोते छाती पीटते व लड़खड़ाते हुए जाते देखा। अपराजित अपने अनुचरों से पूछा—'यह मृत मनुष्य कौन है?' उन्होंने प्रत्युत्तर दिया—'कल आपने जिस अनंगपाल को देखा था, विशूचिका हो जाने से अचानक उसकी मृत्यु हो गयी है।' यह सुनकर अपराजित मन ही मन सोचने लगा—यह संसार असार है। हाय! विधाता न जाने किस समय किस मनुष्य को उठा ले। मोह-निद्रा में आविष्ट मनुष्य का यह प्रमाद भी क्या है! यह सोचते हुए विरक्त बने अपराजित प्रासाद को लौट गए। यद्यपि वे यथानियम राज कार्य करते रहे किन्तु उनका मन किसी भी कार्य में नहीं लगता था।

जिन केवली के दर्शन अपराजित को कुन्दपुर में हुए थे वही केवली अपने ज्ञान से अपराजित की मनःस्थिति को जानकर और उसे उपयुक्त पात्र समझकर दीक्षा देने के लिए एक दिन वहाँ उपस्थित हुए। उनकी धर्मदेशना सुनकर प्रीतिमती के पुत्र पद्म को राज्य सिंहासन पर बैठाकर अपराजित स्वयं उनसे दीक्षित हो गए। रानी प्रीतिमती, अनुज सुर और सोम एवं मंत्री विमलबोध ने भी उनके साथ दीक्षा ग्रहण कर ली।

दीर्घ दिनों तक तपस्या कर वे लोग आरण देव लोक में इन्द्र के सामानिक देव रूप में उत्पन्न हुए और परस्पर सौहार्द भाव रखते हुए स्वर्ग सुख भोग करने लगे।

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में कुरूदेश के अलंकार रूप हस्तिनापुर नामक एक नगर था। वहाँ चन्द्र से श्रीषेण नामक एक राजा राज्य करते थे। उनकी पत्नी का नाम था श्रीमती। वह श्री के ही अनुरूप थी।

रात्रि के शेष भाग में श्रीमती ने एक स्वप्न देखा। देखा शंख-सा शुभ्र पूर्णचन्द्र उसके मुख में प्रवेश कर गया। सुबह उसने अपने पति को स्वप्न की बात बतायी। राजा ने स्वप्न-पाठकों को बुलवाया। उन्होंने गणना कर बताया, 'महाराज, स्वप्न के प्रभाव से महादेवी चन्द्र-से एक पुत्र को जन्म देगी जो शत्रुरूपी समस्त अन्धकार को दूर करेगा।'

अपराजित का जीव स्वर्ग से च्युत होकर उसके गर्भ में प्रवेश किया। यथा समय उसने सर्व सुलक्षण युक्त एक पुत्र को जन्म दिया। रानी ने चन्द्र-सा धवल शंख देखा था। इस कारण राजा ने उसका नाम शंख रखा। पाँच धात्रियों द्वारा पालित होकर वह क्रमशः बड़ा होने लगा। वह सहज ही समस्त विद्या और कला में दक्ष हो गया। गुरु तो मात्र साक्षी रूप थे कारण उस विद्या और कला में तो उसका अधिकार पूर्व जन्म में ही हो गया था।

बिमल बोध का जीव आरण देवलोक से च्युत होकर राजा श्रीषेण के मन्त्री के घर पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ। उसका नाम मतिप्रभ रखा गया। वह समस्त गुणों का निधान था। एक साथ खेल-कूद और पठन-पाठन करने के कारण मन्मथ के माधव की तरह वह शंख का अनुगामी हो गया। मन्त्री पुत्र और अन्यान्य राजकुमारों के साथ क्रीड़ा करते हुए शंख ने क्रमशः यौवन प्राप्त किया।

एक दिन प्रत्यन्त प्रदेश में स्थित प्रजा का एक दल विलाप करता हुआ राजा के पास आया और करुण स्वर में निवेदित किया, 'महाराज, आपके राज्य की सीमा में विशाल शृंग नामक एक विषम पर्वत है, जहाँ से चन्द्र शिशिरा नामक एक नदी प्रवाहित होती है। वहाँ के पल्लीपति एक दुर्ग में रहते हैं और वहाँ से आकर हमारा सर्वस्व लूटकर ले जाते हैं। आप उनसे हमारी रक्षा कीजिए।'

उसका दमन करने के लिए राजा ने रणवाद्य बजवाया। उस रणवाद्य को सुनकर एवं उसका कारण ज्ञात कर शंख कुमार पिता के पास आए और उन्हें प्रणाम कर बोले, 'हे पिताजी, एक सामान्य पल्लीपति के दमन के लिए आप वहाँ जा रहे हैं! हस्ती कभी पतंग की हत्या नहीं करता और न सिंह शशक की। आप मुझे आज्ञा दीजिए मैं उसे बन्दी बनाकर आपकी सेवा में उपस्थित कर दूँगा। इस कार्य के लिए आप युद्ध में न जाएँ—यह आपके लिए असम्मानकर है।'

शंख की यह बात सुनकर राजा प्रसन्न हुए और एक वृहद सैन्यदल के साथ पल्लीपति का दमन करने के लिए उन्हें भेज दिया। कुमार शंख जब पल्लीपति के निकट पहुँचे तो वह धूर्त पल्लीपति दुर्ग का परित्याग कर अन्यत्र कहीं छिप गया। कुशाग्रबुद्धि कुमार शंख ने एक सामन्त के अधिनायकत्व में एक सैन्य दल को उस दुर्ग प्रवेश करवाकर स्वयं एक बड़ी सेना के साथ जंगल में छिप गए। धूर्त पल्लीपति ने तब दुर्ग को घेर लिया और कुमार शंख को उद्देश कर बोला, 'कुमार, अब तुम बाहर कैसे निकलोगे?' जब पल्लीपति कह रहे थे उसी समय शंख कुमार ने अपनी सेना के साथ उसे बाहर से घेर लिया। तदुपरान्त दुर्ग की सेना भीतर से और कुमार की सेना बाहर से आक्रमण करने लगी। दोनों ओर की सेना के मध्य पड़कर अपनी जय असम्भव समझ कर पल्लीपति गले में कुल्हाड़ी लटकाकर कुमार की शरण में आया और बोला, 'प्रभु, मैं अत्यन्त मन्दमति हूँ। भूतप्रेत को दमन कर जिस प्रकार उन्हें

वश में किया जाता है उसी प्रकार मैं भी अब आपके वशीभूत हो गया हूँ। आप मेरा सब कुछ ले लें और मुझ पर कृपा करें।' तब कुमार ने उसका लूटा हुआ सारा धन ग्रहण कर लिया।

कुमार शंख पल्लीपति के साथ रवाना हुआ। पथ पर सन्ध्या हो जाने पर उन्होंने राह के किनारे रात व्यतीत करने के लिए छावनी डाली। मध्य रात्रि में जबकि वे शय्या पर सोए हुए थे किसी रमणी का करूण क्रन्दन सुनायी पड़ा। उस क्रन्दन को सुनकर उसी का अनुसरण करते हुए हाथ में तलवार लिए वे वहाँ पहुँचे जहाँ एक मध्य वयस्क रमणी रो रही थी। वे उसे सान्त्वना देते हुए बोले—'भद्रे, तुम क्यों रो रही हो? तुम्हारा दुःखका क्या कारण है?'

राजकुमार के मधुर वचन सुनकर, उनकी सौम्य आकृति को देखकर उस प्रौढ़ा को सान्त्वना मिली। प्रत्युत्तर में वह बोली, 'हे भद्र, अंग देश के चम्पा नामक नगर में जितारी नामक एक राजा राज्य करते हैं। उनकी रानी का नाम कीर्तिमती है। कई पुत्रों को जन्म देने के पश्चात उसने यशोमती नामक एक कन्या को जन्म दिया। विवाह योग्य होने पर भी वह किसी पुरुष को देखना ही नहीं चाहती थी मानो पुरुषों में कोई आनन्द नहीं है। किन्तु अभी उसने राजा श्रीषेण के पुत्र शंखकुमार के विषय में सुना है तभी से उसका हृदय में मदन का विकास हो गया है। यशोमती अब कहती है उसका पति शंख कुमार ही होगा अन्य कोई नहीं। योग्य पात्र पर उसका प्रेम उमड़ा है जानकर राजा ने आनन्दित होकर राजा श्रीषेण के पास विवाह प्रस्ताव लेकर दूत भेजा था। किन्तु इसी बीच एक विद्याधर राजा मणिशेखर ने उसके पाणिग्रहण की याचना की है। राजा जितारि ने उसे यशोमती की प्रतिज्ञा सुनायी। उस समय तो वह चला गया किन्तु बाद में उसने यशोमति का अपहरण कर लिया। मैं उसकी धात्री हूँ। उसका हाथ पकड़कर मैं यहाँ तक आयी किन्तु वह दुष्ट मुझे यहाँ जबरदस्ती छोड़कर चला गया। पृथ्वी की सार रूप उस कन्या रत्न को वह न जाने कहाँ ले गया होगा। मैं इसीलिए करुण स्वर में विलाप कर रही हूँ। न जाने वह कैसे बच सकी होगी।'

सारा वृत्तान्त सुनकर कुमार शंख बोले, 'माँ, तुम धैर्य धारण करो। मैं उस विद्याधर को पराजित कर राज कन्या को यहाँ ले आऊँगा। ऐसा कहकर उन्होंने एक महारण्य में प्रवेश किया और उसे खोजते हुए सूर्य जब पूर्वांचल पर उदित हुआ वे विशाल शृंग पर्वत के निकट पहुँच गए। वहाँ उन्होंने उसी विद्याधर को यशोमती से अनुनय-विनय करते देखा। और प्रत्युत्तर में वह कह रही थी 'शंख की भाँति जिसकी धवल यशोराश है वे ही मेरे पति होंगे और

कोई नहीं। हे नीच, तुम मुझे क्यों विव्रत कर रहे हो? मेरी आकांक्षा कर तुम अलभ्य वस्तु की आकांक्षा कर रहे हो।'

उसी क्षण कुमार शंख पर मणिशेखर की दृष्टि पड़ी। वह बोल उठा, 'मूर्ख लड़की, मृत्यु द्वारा आकृष्ट होकर तेरा प्रेमी अब मेरे अधिकार में आ गया है। तेरी आशा के साथ-साथ उसे भी विनष्ट कर मैं तुझसे जबरदस्ती विवाह कर तुझे अपने घर ले जाऊँगा।'

उसे इस प्रकार कहते हुए सुनकर शंख बोल उठे, 'ओ नीच, पर-स्त्री का अपहरण करने वाले पापी, तैयार हो जा। मैं अपनी तलवार से तेरे मस्तक के दो टुकड़े कर दूँगा।' ऐसा कहकर उन्होंने मणिशेखर पर आक्रमण किया। फिर तलवार उठाकर दोनों पराक्रमी ने मानों नृत्य की ताल पर पर्वत कम्पित करते हुए दीर्घ काल तक युद्ध किया। जब मणिशेखर ने देखा कुमार को केवल अस्त्रों से पराजित नहीं किया जा सकता तब उसने मन्त्रों का आश्रय लिया। किन्तु कुमार के पूर्व जन्म के सुकृत के कारण उसके द्वारा फेंके अग्नि गोलकादि व्यर्थ हो गए। कुछेक उन्होंने अपनी तलवार के आघात से भी काट डाला। कुमार ने उसके हाथ से धनुष छीन लिया और उसी के तीर से उसके वक्ष को बींध डाला। मूल से छिन्न वृक्ष की भाँति मणिशेखर मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। तब शंख वीजनादि से उसे होश में लाए और युद्ध के लिए प्रस्तुत होने को कहा।

किन्तु प्रत्युत्तर में मणिशेखर ने कहा, 'हे कुमार, अपराजितों में श्रेष्ठ मैं आपके द्वारा पराजित हुआ हूँ। हे महाबलशाली, आप निश्चय ही सामान्य पुरुष नहीं हैं। आपके गुणों के कारण यशोमती आप पर अनुरागी हुई है उसी प्रकार मैं आपके शौर्य का अनुरागी हुआ हूँ। आप मेरा अपराध क्षमा करें।'

शंख कुमार बोले, 'हे महाभाग, मैं आपके बाहुबल से जिस प्रकार प्रसन्न हुआ हूँ उसी प्रकार आपकी नम्रता से भी प्रसन्न हुआ हूँ। अब कहें, मैं आपके लिए क्या कर सकता हूँ?'

मणिशेखर बोले, 'यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मेरे साथ वैताढ्य पर्वत पर चलें। वहाँ जाने पर शाश्वत जिन चैत्यों की यात्रा भी होगी और साथ-साथ मुझ पर अनुग्रह भी।'

शंखकुमार ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। यशोमती भी खूब आनन्दित हुयी और सोचने लगी सचमुच ही मैंने एक ऐसे महद् पति का चयन किया है।

इसी बीच मणिशेखर के कुछ अनुचर वहाँ आकर उपस्थित हुए। सारा वृत्तान्त समझ कर उन्होंने कुमार शंख को प्रणाम किया। शंख कुमार ने उन दोनों को अपनी सेना के पास भेजकर उन्हें हस्तिनापुर की ओर प्रयाण करने का आदेश दिया और वहाँ से लौटते समय यशोमती के धाय को लाने के लिए कहा। शंख यशोमती और धाय के साथ वैताढ्य पर्वत पर गए। वहाँ शाश्वत जिन चैत्यों की आराधन और यशोमती सहित जिन बिम्बों की पूजा की।

मणिशेखर वहाँ से शंख कुमार को कनकपुर ले गया और देवता की तरह उनकी पूजा की। वहाँ के लोगों ने मानो कोई अजूबा आया है इस प्रकार बारम्बार उनके समीप आकर उन्हें देखने लगे। वहाँ के अन्यान्य खेचरों ने भी उनके शौर्य के कारण उनकी अधीनता स्वीकार कर ली। उन्होंने उन्हें अपनी कन्याएँ देनी चाहीं, किन्तु कुमार बोले, 'प्रथम मैं यशोमती के साथ विवाह करूँगा। तत्पश्चात् अन्य के साथ।' तब मणिशेखर और अन्यान्य विद्याधरपति स्व-कन्याओं को लेकर शंख कुमार और यशोमती के साथ चम्पानगरी गए। राजा जितारि को भी सूचित करवा दिया गया कि विद्याधर द्वारा परिवृत होकर कुमार शंख उनकी कन्या को लौटा लाए हैं। सुनते ही उनके आनन्द की कोई सीमा ही नहीं रही। वे कुमार का स्वागत करने आए। उन्हें प्रगाढ़ आलिंगन में लेकर महा धूमधाम से उनका नगर प्रवेश करवाया और यशोमती के साथ उनका विवाह कर दिया। तदुपरान्त कुमार ने अन्यान्य विद्याधर कन्याओं के साथ विवाह किया। विवाहोत्सव समाप्त होने पर शंख कुमार वासुपूज्य स्वामी के मन्दिर में आकर भक्तिपूर्वक उनकी पूजा की। फिर विद्याधर राजाओं को विदा कर वे यशोमती एवं अन्यान्य राजकन्याओं के साथ कुछ दिन वहाँ रहे। तत्पश्चात् हस्तिनापुर की ओर प्रस्थान कर गए।

सूर और सोम आरण देवलोक से च्युत होकर पूर्वजन्म की भाँति उनके अनुज यशोधर और गुणधर बने। एक दिन विरक्त होकर राजा श्रीषेण शंख कुमार को सिंहासन पर बैठाकर गणधर गुणधर से दीक्षित हो गए। श्रीषेण जितनी दुष्कर तपस्या करने लगे शंख उसी प्रकार शंख से धवल यशः से पृथ्वी को पूरित करते हुए राज्य शासन करने लगे।

एक दिन मुनि श्रीषेण केवलज्ञान प्राप्त कर प्रव्रजन करते हुए देवों द्वारा परिवृत होकर वहाँ आए। संवाद मिलते ही शंख उन्हें वन्दन करने गए और भवसागर को अतिक्रम करने में नौका स्वरूप उनकी देशना सुनी। देशना शेष होने पर उन्होंने केवली भगवान से जिज्ञासा की, भगवन् आपकी देशना

सुनकर मैं यह समझ गया हूँ कि यहाँ कोई किसी का नहीं। फिर भी यशोमती के लिए मेरा इतना ममत्व क्यों है यही जानने को उत्सुक हूँ। कृपया मुझे यह बताएँ। केवली श्रीषेण बोले, 'तुम्हारे धन के जन्म में यशोमती धनवती नामक तुम्हारी पत्नी थी। सौधर्म देवलोक में तुमलोग मित्रवत थे। चित्रगति के जन्म में वह रत्नावती नामक तुम्हारी पत्नी थी। सौधर्म देवलोक में तुमलोग मित्रवत् थे। चित्रगति के जन्म में वह रत्नावती नामक तुम्हारी पत्नी थी। माहेन्द्र देवलोक में तुमलोग पुनः मित्र रूप रहे। अपराजित के जन्म में वह प्रीतिमती नामक तुम्हारी पत्नी थी एवं आरण देवलोक में तुमलोग पुनः मित्र रूप में रहे। वहाँ से च्युत होकर इस अष्टम् जन्म में तुम शंख कुमार बने हो और वह यशोमती नामक तुम्हारी रानी बनी है। इन पूर्व जन्मों के सम्बन्ध के कारण उस पर तुम्हारी प्रगाढ़ प्रीति है। यहाँ से तुम अनुत्तर विमान में जाओगे, वहाँ से च्युत होकर तुम भरत क्षेत्र के नेमीनाथ नामक बाइसवें तीर्थंकर होगे और यशोमती राजीमती के रूप में उत्पन्न होगी। उस जन्म में तुम उससे विवाह नहीं करोगे। किन्तु वह तुम पर अनुराग रखेगी और तुमसे दीक्षा लेकर मोक्ष पद प्राप्त करेगी। तुम्हारे अनुज यशोधर और गुणधर ये तुम्हारे पूर्वजन्म के भाई हैं। ये दोनों और मन्त्री मतिप्रभ अरिष्टनेमी के जन्म में तुम्हारे गणधर होकर मुक्ति प्राप्त करेंगे।

यह सुनकर शंख अपने पुत्र पुण्डरिक को सिंहासन पर बैठाकर पत्नी यशोमती, दोनों अनुज और मन्त्री सहित उनसे दीक्षित हो गये। कालक्रम से वे गीतार्थ हुए और कठिन तपश्चर्या, अर्हत भक्ति एवं बीज स्थानक की आराधना कर तीर्थंकर गोत्रकर्म उपार्जन किया। अन्त में पादोपगमन अनशन में मृत्युवरण कर वे अपराजित विमान को प्राप्त हुए। यशोमती एवं अन्यों ने भी कठिन तपश्चर्या कर उसी विमान को प्राप्त किया।

प्रथम सर्ग समाप्त

द्वितीय सर्ग

इस भरत क्षेत्र में कृष्ण वस्त्र की तरह यमुना नदी द्वारा अलंकृत मथुरा नामक एक नगरी थी। वहाँ हरिवंश में वसुपुत्र वृहद् ध्वज के पश्चात् अनेक राजाओं ने राज्य किया। उस समय वहाँ यदु नामक राजा राज्य कर रहे थे। यदु के पुत्र सूर्य-सा प्रतापी शूर नाम एक पुत्र था। शूर के दो वीर पुत्र थे शौरी और सुवीर। राजा शूर ने शौरी को राज्य सिंहासन दिया और सुवीर को युवराज पद पर अभिषिक्त कर विरक्त हो जाने के कारण उन्होंने मुनि दीक्षा ग्रहण कर ली।

शौरी मथुरा का राज्य अपने अनुज को देकर कुशार्त नगर चले गए और वहाँ शौर्यपुर नामक नगरी की प्रतिष्ठा की। शौरी राजा के अन्धक वृष्णि आदि और सुवीर के भोजक वृष्णि आदि पुत्र हुए। सुवीर राजा मथुरा का राज्य भोजक वृष्णि को देकर सिन्धु देश चले गए और वहाँ शौवीर नामक नगरी की प्रतिष्ठा की। महाशक्तिशाली शौवीर अपने पुत्र अन्धक वृष्णि को राज्य देकर सुप्रतिष्ठ मुनि से दीक्षा ग्रहण कर ली और दीर्घ तपस्या कर मोक्ष को प्राप्त किया। मथुरा में भोजक वृष्णि के उग्रसेन नामक एक महाबलशाली पुत्र उत्पन्न हुआ। रानी सुभद्रा के गर्भ से अन्धक वृष्णि के दस पुत्र उत्पन्न हुए। उनके नाम थे समुद्र विजय, अक्षोभ्य, स्तिमित, सागर, हिमवान, अचल, धरण, पूरण, अभिचन्द्र और वसुदेव। इन्हें दशार्ह कहा जाता था। इनके कुन्ती और माद्री दो छोटी बहिनें थीं। इनके पिता ने कुन्ती को पाण्डु के हाथों में सौंपा और माद्री को दमघोष के हाथों में।

अन्धक वृष्णि ने एक दिन केवली सुप्रतिष्ठ को वन्दना कर जिज्ञासा की भगवन्, मेरा दसवाँ पुत्र वसुदेव क्यों इतना रूपवान, गुणवान, कलाभिज्ञ और शौर्य सम्पन्न है?

मुनि सुप्रतिष्ठ बोले, 'मगध देश के नन्दी ग्राम में एक दरिद्र ब्राह्मण रहता था। उसकी पत्नी का नाम था सोमिला। उसके अभाग्य का शिरोमणि सा नन्दी सेन नामक एक पुत्र था। वह जब बालक था तभी उसके माता-पिता की मृत्यु हो गयी थी। उसका पेट मोटा, दाँत विकराल, दृष्टि क्षीण एवं माथा चपटा था। इतना ही नहीं उसके अन्यान्य अंग भी दोषयुक्त थे। अतः उसके आत्मीय परिजनों ने भी उसका त्याग कर दिया था। अन्ततः उसके मामा ने उसे आश्रय दिया। मामा के विवाह योग्य सात कन्याएँ थीं। मामा ने उससे कहा 'मैं इनमें से एक कन्या के साथ तेरा विवाह कर दूँगा।' पत्नी प्राप्ति की आशा में नन्दी सेन मामा के घर काम करने लगा। बड़ी लड़की को जब इस बात का पता चला तो वह बोली, 'यदि पिताजी ने उसके साथ मेरा विवाह किया तो मैं निश्चय ही आत्म-हत्या कर लूँगी। यह सुनकर नन्दी सेन दुखित हुआ। किन्तु उसका मामा उससे बोला, 'मैं दूसरी लड़की के साथ तेरा विवाह कर दूँगा, तू कोई चिन्ता मत कर। किन्तु दूसरी लड़की को जब इस बात का पता चला तो उसने भी यही प्रतिज्ञा कर ली इस प्रकार एक एक कर सभी लड़कियाँ उससे विवाह करने को राजी नहीं हुयी।

तब मामा बोला, 'पुत्र, मैं किसी अन्य लड़की के साथ तेरा विवाह कर दूँगा, तू दुःखी मत हो।' तब नन्दीसेन सोचने लगा अपनी मामा की लड़कियाँ

ही जब मुझे नहीं चाहतीं तो मुझ-से कुरूप को अन्य लड़कियाँ क्यों चाहेंगी। ऐसे सोचते-सोचते वैराग्य हो जाने के कारण वह मामा का घर त्याग कर रत्नपुर चला गया। वहाँ स्त्री पुरुषों को एकत्र क्रीड़ा करते देखकर अपनी निन्दा करने लगा। संसार से वितृष्ण होकर वह आत्महत्या की इच्छा से एक उपवन में गया। वहाँ उसे सुस्थित नामक एक मुनि मिले। उसने वन्दना की। वे अपने आभ्यन्तरिक ज्ञान से उसकी मनःस्थिति जानकर बोले, 'हे भद्र, आत्महत्या करना उचित नहीं है। दुःख का कारण ही तो अधर्म है। अतः यदि सुख चाहते हो तो धर्म की आराधना करो। यह निश्चित है कि आत्महत्या कर तुम सुख प्राप्त नहीं कर सकोगे। श्रावण्य रूप धर्म ग्रहण कर तुम मृत्यु के पश्चात् सुख प्राप्त कर सकोगे।'

उनकी यह बात सुनकर नन्दीसेन अपने कर्त्तव्य को समझ गया। उसने आत्महत्या की इच्छा का परित्याग कर उन्हीं से श्रमण दीक्षा-ग्रहण कर ली। कुछ दिनों में गीतार्थ बनकर उसने साधु सेवा का व्रत ग्रहण कर लिया।

बहुत दिनों पश्चात् एक दिन देव-सभा में इन्द्र ने नन्दीसेन मुनि की बिना किसी खिन्नता के की जाने वाली सेवा की प्रशंसा की। एक देव को इन्द्र की बात का विश्वास नहीं हुआ। वह उसकी परीक्षा लेने के उद्देश्य से एक रुग्ण साधु का रूप धारण कर रत्नपुर के बाहरी उद्यान में जाकर पड़ा रहा और अन्य एक साधु का रूप धारण कर नन्दी सेन के पास पहुँचा। नन्दीसेन उस समय उपधान का पारणा करने बैठा ही था कि वह उनसे बोला, 'हे नन्दीसेन, साधु-सेवा का व्रत लेकर तुम इस समय खाने कैसे बैठ गए हो जब कि नगर के बाहर क्षुधा-तृष्णा से पीड़ित और विसूचिका रोग से ग्रस्त एक मुनि गिरे हुए पड़े हैं।'

साधु वेशी देव की बात सुनकर नन्दीसेन मुनि आहार छोड़कर पीड़ित साधु की खोज में निकला। राह में उसने शुद्ध जल की खोज की किन्तु कहीं भी शुद्ध जल पाया नहीं गया क्योंकि वह देव समस्त शुद्ध जल को अशुद्ध करने लगा। किन्तु अन्ततः अपने तपोबल से नन्दीसेन ने शुद्ध जल प्राप्त कर ही लिया।

मुनि नन्दीसेन जब जल लेकर उसके निकट पहुँचा वह क्रुद्ध होकर नन्दीसेन को गालियां देते हुए कहने लगे—'जबकि मैं यहाँ इस अवस्था में पड़ा हूँ और तू गिटने बैठ गया, मेरी खबर तक नहीं ली। धिक्कार है तुझे और तेरे सेवा व्रत को। इसी प्रकार तू साधुओं की सेवा करेगा!'

प्रत्युत्तर में नन्दीसेन ने करबद्ध होकर विनीत भावसे उनसे कहा, 'हे मुनि-श्रेष्ठ, आप मेरे अपराध को क्षमा करें। अब मैं आपकी सेवा में कोई त्रुटि नहीं रखूँगा। आपके लिए यह शुद्ध जल लाया हूँ। आप यह जल ग्रहण करें।'

ऐसा कहकर मुनिराज को जल पिलाने के पश्चात् उसने उन्हें खड़े होने को कहा किन्तु वह साधु रूपी देव इससे क्रुद्ध होकर बोले, 'मूर्ख, क्या तू देख नहीं पा रहा है कि मैं उठने में असमर्थ हूँ?'

मुनि की यह बात सुनकर उसने उन्हें कंधे पर उठा लिया। किन्तु साधु रूपी वह देव कन्धे पर बैठते ही पद-पद पर नन्दीसेन को धिक्कारने लगे—'तू इतनी तेजी से क्यों चल रहा है। मुझे झटका लग रहा है, कष्ट हो रहा है। अगर मेरी सेवा करना चाह रहा है तो धीरे-धीरे चल।'

उनके आदेशानुसार नन्दीसेन धीरे-धीरे चलने लगा। कुछ दूर पहुँचा भी नहीं था कि उन्होंने उसे मल-मूत्र से भर दिया और कहने लगे—'तूने अपनी गति मन्द क्यों की?' किन्तु नन्दीसेन ने उस बात पर कोई ध्यान नहीं दिया। उसका तो एकमात्र ध्येय था कि मुनि को स्वस्थ कैसे किया जाए? तब उस देव ने स्वरूप धारण कर उसको मलीनता से मुक्त किया और उस पर पुष्पों की वर्षा की। फिर उसे तीन प्रदक्षिणा देकर शक्रकृत उसकी प्रशंसा का सारा विवरण सुनाया और अपनी भूल के लिए क्षमा याचना की। फिर बोले, 'मैं आपको क्या दे सकता हूँ?' नन्दीसेन बोला, 'मैंने जो धर्म संचय किया है वह संसार में रहकर करना कठिन है। अतः आपसे अब मुझे कुछ नहीं चाहिये।' देव स्वर्ग को लौट गए और नन्दीसेन उपाश्रय को। साधुओं के पूछने पर नन्दीसेन ने गर्व रहित होकर जो-जो घटा था सब कह सुनाया।

इस प्रकार बारह हजार वर्षों तक नन्दीसेन ने कठोर तपश्चर्या की और अन्तिम समय में एक उपवास के पश्चात् अपने कठोर बाल्यकाल को स्मरण करते हुए मन ही मन निदान किया यदि मेरे तप का कोई फल हो तो आगामी जन्म में मैं स्त्रियों का प्रिय बनूँ। मृत्यु के पश्चात् वह महाशुक्र देवलोक में देव हुआ। वहाँ से च्युत होकर तुम्हारे पुत्र वसुदेव के रूप में जन्म ग्रहण किया है और निदान के कारण स्त्रियों का प्रिय है।

[क्रमशः

संकलन

|| सफेद तालाब का हंस ||

दिसम्बर १९९३ में श्रवण बेलगोला स्थित गोम्मटेश्वर की अद्वितीय-अप्रतिम प्रतिमा का महामस्तकाभिषेक सम्पन्न होगा। यह सुखद है। रोमांचक है। आह्लाद पूर्ण है। चित्त में उमंग भरता है और एक आध्यात्मिक जीवन शैली की ओर अचूक संकेत करता है।

जब इन पंक्तियों को लिखा जा रहा है तब कलम की नोक पर १३ मार्च १९८१ की प्रभात-किरणें अनाहूत आ बैठी है। लग रहा है कि वह प्रभात मात्र एक पार्थिव प्रभात नहीं था वरण एक ऐसा सवेरा था, जिसने मानव सभ्यता के सर्वोच्च शिखर (गुम्मर) को भगवान् बाहुबली के इस विशाल विग्रह के माध्यम से छुआ था। कल्पना कीजिए जब शिल्पी ने इस विशाल प्रतिमा पर अपनी टाँका का अन्तिम सुकुमार स्पर्श किया था और यह बनकर तैयार हुई थी, तब उसके अंगोपांगो से जो अध्यात्म-रश्मियाँ प्रस्फुटित हुई थीं क्या हम आज उसे बरकरार रख पा रहे हैं ! क्या हम व्यर्थ की इस भौतिक चका-चौंध में पाषाण में झंकृत उन स्वरों को नहीं भूल रहे हैं जो शताब्दियाँ चीर कर हमारे मनः प्राण को आज भी नये शिखर प्रदान करने में समर्थ हैं !

पता नहीं क्यों जब हमारा ध्यान श्रवण बेल गोला के भूगोल पर जाता है, तब रोम-रोम में एक ऐसी पुलक पैठ जाती है, जिसकी सानी दुनिया में शायद कहीं नहीं है। लगता है जैसे रोआँ-रोआँ बाहुबली की तपो भूमि बन गया हो और इन तपो भूमियों में वह आत्मबली अपने सम्पूर्ण वैभव के साथ उपस्थित हो।

आमने-सामने खड़े सहोदर पर्वत विन्ध्य / चन्द्रगिरि, और बीचों-बीच बना धवल सरोवर क्या यह छटा हमारे मनः प्राण अभिभूत नहीं करती ! चन्द्रगिरि पर श्रमणों की सल्लेखनाएँ और विद्यागिरि की यह विश्व विश्रुत प्रतिमा—सब एक साथ प्रतिबिम्बित है इस सफेद तालाब में। लगता है जैसे दोनों पहाड़ियाँ इस तालाब में अपनी मुखछबियों को अहर्निश संवारती है और 'द्रव्य संग्रह' की गाथाओं की स्वरलहरियाँ इस पर नृत्य करती हैं। सम्पूर्ण वातावरण में एक अभिनव अध्यात्म झंकृत हो उठता है।

—डा० नेमीचन्द जैन

जैन पत्र-पत्रिकाएँ—कहाँ/क्या

अनेकान्त ॥ जुलाई-सितम्बर १९९२

इस अंक में है 'अभिज्ञान शाकुन्तल में अहिंसा के प्रसंग' (डॉ० रमेशचन्द्र जैन), 'आचार्य कुन्दकुन्द की दृष्टि में जिन दीक्षा : एक अध्ययन' (राजेन्द्र कुमार बंसल), 'तीर्थंकर शीतलनाथ' (गुलाबचन्द्र जैन), 'चन्देलकालीन मदन सागरपुर के श्रावक' (प्रो० यशवंत कुमार मलैया), 'केन्द्रीय संग्रहालय गूजरी महल ग्वालियर की तीर्थंकर नेमिनाथ की मूर्तियाँ' (नरेशकुमार पाठक), 'सुख का सच्चा साधन : बारह भावना' (शीतल सागर), 'श्रीलंका में जैन धर्म और अशोक' (राजमल जैन), 'परिग्रह : मूर्च्छाभाव' (पद्मचन्द्र शास्त्री)।

जर्नल अवध ओरियेन्टल इन्स्टीट्युट ॥ सितम्बर-दिसम्बर १९९१

इस अंकमें है 'Measurements of Jina Idols' (R.P.Kulkarni).

तीर्थंकर ॥ सितम्बर-नवम्बर १९९२

सम्पादकीय के अतिरिक्त इस अंक में है 'युद्धरहित मानव-समाज-रचना का प्रथम पुरुषार्थ' (डॉ० नेमीचंद जैन), 'अदृश्य : अनुचिन्तन' (कन्हैयालाल सरावगी), 'महामस्तकाभिषेक : सोचें कुछ इस तरह' (ज्ञानचन्द्र खिन्दूका), 'श्रवण बेलगोला और श्री गोम्मटेश्वर का महामस्तकाभिषेक' (डॉ० दरबारीलाल कोठिया), 'भरत-बाहुबली : आज अधिक प्रासंगिक' (निर्मलकुमार जैन), 'बढ़ते गये पाँव : चढ़ता गया पहाड़' (यात्रा विवरण), (डॉ० नेमीचन्द जैन), 'आज हम दोनों हारे हैं (कथांश)' (नीरज जैन), 'आगे के पड़ाव बहुत ही आह्लादकारी हैं : क्यों वे और भी कठिन है' (दस्तखत बनाम खत) (लक्ष्मीचन्द जैन), 'सामायिक : साधु की, श्रावक की' (खत) (गणेश ललवानी)।

सद्य प्रकाशित

बरसात की एक रात

गणेश ललवानी

हिन्दी रूपान्तर

राजकुमारी बेगानी

'बरसात की एक रात' को पढ़ना न सिर्फ रोमांचक है, अपितु इतिहास के यथार्थ को कल्पना के ललित वेष्टन में समानुपातिक पाने का एक कल्पनातीत अनुभव भी है। नवों कहानियाँ मात्र कहानियाँ नहीं हैं, कहानियों के अतिरिक्त भी प्रच्छन्न कुछ और है।...

इन कथाओं में लेखक ने अतीत में आधुनिकता का सफल संधान किया है। अन्धविश्वास को तो निर्वस्त्र किया ही है, जैन आगम में वर्जित कथानकों। घटनाओं की भी निश्छल पुनर्व्याख्या की है। इसके अतिरिक्त कुछ भूमिस्थ तथ्यों का भी सफल उत्खनन किया है। सल्लेखनी, पुनर्जन्म, कर्म-सिद्धान्त इत्यादि को 'बरसात की एक रात' की कथा सन्धियों में सहज ही धड़कते देखा जा सकता है। वे संधि-असंधियों पर कुछ इस तरह उपस्थित हैं कि उन्हें वही देख पा सकता है जो गत और आगत की दर्ज के बीच आँख खोलने की हिम्मत और दक्षता रखता है।

भाषा का जो आर्जव जो ऐश्वर्य 'बरसात की एक रात' में युगपत् है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है।

—डॉ॰ नेमीचन्द जैन,
तीर्थंकर (भूमिका से)

मूल्य ४५ रुपये
(डाक व्यय निःशुल्क)

जैन भवन
पी-२५ कलाकार स्ट्रीट, कलकत्ता ७

LODHA MOTORS

A House of Telco Genuine Spare Parts and
Govt. Order Suppliers.
Also Authorised Dealers of Pace-setter and
Nicco Batteries in Nagaland State.

GOLAGHAT ROAD, DIMAPUR
NAGALAND

Phone : Off. 21039
Res. 21174

The Bikaner Woollen Mills

Manufacturer and Exporter of Superior Quality
Woollen Yarn, Carpet Yarn and Superior
Quality Handknotted Carpets

Factory and Sales Office :
BIKANER WOOLLEN MILLS

Post Box No. 24
Bikaner, Rajasthan
Phone : Off. 3204
Res. 3356

Main Office :
4 Meer Bohar Ghat Street
Calcutta-700007
Phone : 30-2071

Branch Office :
Peerkhanpur : Bhadhoi
Phone : 5378
5578,5778

WB/NC-330
Vol. XVII No. 8 TITTHAYARA December 1993
Registered with the Registrar of Newspapers for India
under No. R. N. 30181/77

आ.श्री. कैलाससागर सूरि ज्ञान मंदिर
श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र कोबा

बनारसी साड़ी

इण्डियन सिल्क हाउस
कॉलेज स्ट्रीट मार्केट • कलकत्ता-१२